समकालीन हस्तक्षेप
साहित्य, समाज और संस्कृति की पीयर-रिव्यूड त्रैमासिक शोध-पत्रिका
SJIF 2023 = 7.858, ISSN: 2277-7857
वर्ष: 17, अंक: 3, जनवरी - मार्च 2024
ई-मेल: issn22777857@gmail.com
वेबसाइट: www.hastakshep.co.in

महिला जूट श्रमिकों पर औद्योगिक श्रम अधिनियम का प्रभाव (1947-1991)

शत्रुघ्न काहार
सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग, डेबरा थाना शहीद क्षुदीराम स्मृति महाविद्यालय, पश्चिम बंगाल
ई-मेल: skahar0072015@gmail.com

सारांश

जूट मिलों के विकास के शुरुआती दौर से ही बड़ी संख्या में महिला श्रमिक जूट मिलों से जुड़ने लगीं थीं। महिलाओं ने न केवल अकुशल कार्यों में बल्कि कुशल कार्यों में भी उत्कृष्ट प्रदर्शन किया, यहाँ तक कि कई मामलों में आश्चर्यजनक रूप से पुरुषों से भी बेहतर प्रदर्शन किया। मिल अधिकारियों के लिए शुरू में उनसे कम वेतन पर पूरा काम लेना लाभदायक था। लेकिन श्रम कानूनों के धीरे-धीरे लागू होने से महिला श्रमिकों को कई विशेषाधिकार दिए गए। हालाँकि मिलों ने शुरू में इस अधिनियम का अनुपालन नहीं किया, फिर भी उन्हें कुछ दायित्वों का पालन करना पड़ा। 1939 में मातृत्व लाभ अधिनियम के पारित होने और 1947 में देश को आजादी मिलने के बाद, 1948 के फैक्ट्री अधिनियम में महिला श्रमिकों को अधिकार और विशेषाधिकार प्रदान करने के लिए कुछ नए प्रावधान किए गए। जिसमे मिल मालिकों ने न केवल महिला श्रमिकों को रोजगार देने में अतिरिक्त पूंजी का निवेश देखा, बल्कि यह उनके लिए एक अवांछित परेशानी भी थी। इसलिए इस समस्या से छुटकारा पाने के लिए उन्होंने एक बहुत ही आसान तरीका खोजा और धीरे-धीरे मिलों के अंदर महिला श्रमिकों को नियोजित करना बंद कर दिया और जो महिलाएँ कार्यरत थीं उन्हें मुख्य रूप से स्थानांतरण या अनुबंध कार्य में लगा दिया गया, ताकि उन्हें उपरोक्त कोई भी लाभ प्रदान न करना पड़े।

बीज-शब्द: *महिला, श्रमिकों, जूटमिल, प्रसूति, प्रसुबिधा, अधिनियम, कानून।*

प्रस्तावना

1855 में रिशरा में पहली जूट मिल की स्थापना के साथ बंगाल में औद्योगीकरण शुरू हुआ। अगले दो दशकों में हुगली नदी के दोनों किनारों पर चटकलों की स्थापना ने बंगाल के समग्र चरित्र को बदल दिया। जूट मिलें स्थापित करने का यह चलन 19वीं सदी के पहले दशक तक जारी रहा। चटकलों पर केंद्रित बंगाल के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में एक बड़ा बदलाव देखा जा सकता है। पूर्व में ब्रिटिश सरकार द्वारा अपनाई गई सीमा शुल्क नीति, भूमि व्यवस्था और व्यापार नीति का बंगाल और भारत के कुटीर उद्योग पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा, जिसे व्यापक रूप से विऔद्योगीकरण के रूप में जाना जाता है।1[1] इस विऔद्योगीकरण के परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में कारीगर बेरोजगार हो गये। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में बंगाल में विकसित हुए इस जूट उद्योग ने इन बेरोजगारों की आजीविका को एक नई दिशा दी।हालाँकि 1880 तक बंगाल की जूट मिलों में स्थानीय श्रमिकों की उपस्थिति अधिक थी, लेकिन बीसवीं सदी के पहले दशक से बिहार, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा से गैर-बंगाली श्रमिकों का इन मिलों में आना शुरू हो गया[2] और इसके माध्यम से बंगाल में एक नए वर्ग का उदय हुआ, जो मजदूर वर्ग के नाम से जाना जाता है। एक ओर, बंगाली मिलों के श्रमसाध्य कार्य से घृणा करते थे, इसके अलावा, वे मिलों पर काम करने के लिए बहुत अनिच्छुक थे क्योंकि मिल के काम की तुलना में खेती अधिक लाभदायक थी, दूसरी ओर मुख्य रूप से श्रम की मांग, संचार प्रणाली में महान सुधार और अत्यधिक विऔद्योगीकरण के कारण वित्तीय कमी ने इन गैर-बंगाली श्रमिकों को कलकत्ता की ओर आकर्षित किया। निःसंदेह, इसमें एक नये जीवन की आशा भी जुड़ गयी थी। न केवल पुरुष श्रमिकों ने इस आशा पर प्रतिक्रिया व्यक्त की, बल्कि बड़ी संख्या में महिला श्रमिक भी नई जिंदगी की उम्मीद में बंगाल की जूट मिलों में शामिल हो गईं। एस. आर. देशपांडे की रिपोर्ट में, पुरुष और महिला जूट श्रमिकों का अनुपात 5:1 था।[3] हालाँकि, इन महिला श्रमिकों को श्रम इतिहासलेखन में अधिक स्थान नहीं मिलता था।

दरअसल, अब तक जितने भी ऐतिहासिक अध्ययन हुए हैं उनमें मुख्य रूप से पुरुष श्रमिकों को केंद्र में रखकर 'संपूर्ण श्रमिक वर्ग' की चर्चा की गई है। न केवल बंगाल या भारत में बल्कि दुनिया भर के श्रम इतिहास में लंबे समय तक, यहां तक कि मार्क्सवादी लेखकों द्वारा भी, पुरुषों को ही श्रमिक वर्ग का पर्याय माना जाता था। औपनिवेशिक राज्य, नियोक्ताओं और यहां तक कि ट्रेड यूनियन नेताओं ने भी यह नहीं सोचा था कि महिला श्रमिकों की अपनी कोई मांग हो सकती है। यही बात साम्राज्यवादी, राष्ट्रवादी और यहाँ तक कि मार्क्सवादी इतिहासकारों में भी देखी जाती है। उत्तरार्द्ध सोचते हैं कि महिला श्रमिकों की समस्या तभी हल होगी जब पूंजीपतियों के खिलाफ श्रमिक वर्ग का संघर्ष सफल होगा। दूसरी ओर, कट्टरपंथी नारीवादियों का मानना है कि जब तक समाज में पितृसत्ता कायम रहेगी, तब तक श्रमिकों के साथ-साथ अन्य वर्गों में भी महिलाओं के प्रति भेदभाव समाप्त नहीं होगा। 'वीमेन एंड लेबर इन लेट कोलोनियल इंडिया: द बंगाल जूट इंडस्ट्री' (1999) में शमिता सेन का बंगाल की जूट महिला श्रमिकों पर अध्ययन एक नई दिशा प्रदान करता है। वह दिखाना चाहती हैं कि कैसे 1890 और 1940 के बीच फैक्ट्री के काम ने परिवार और समाज में महिलाओं की जगह बदल दी और कैसे वित्तीय आत्मनिर्भरता ने उन्हें आत्मविश्वास और सम्मान की भावना दी। इसके साथ ही उन्होंने इस बात पर भी प्रकाश डाला है कि कैसे पितृसत्तात्मक समाज ने इन महिलाओं की राह में बाधाएं पैदा की हैं।[4]

इतिहासकार अमल दास का निबंध 'बंगाल के चटकल श्रमिकों का बाहरी जीवन (1870 से 1920)' मुख्य रूप से केवल इन पुरुष श्रमिकों पर ही केंद्रित है। प्रोफेसर मंजू चट्टोपाध्याय ने अपने निबंध 'चटकल की बालिका श्रमिक- 70 वर्ष पहले और बाद' में महिला जूट श्रमिकों पर जो निबंध लिखा है, वह वाकई सराहनीय है।[5] हाल ही में डा. सुतापा सेनगुप्ता ने अपनी पुस्तक 'पर्सिक्यूशन एंड प्रोटेस्ट' में चट उद्योग में महिला श्रमिकों की स्थिति और कुछ महिला नेताओं के संघर्ष के इतिहास पर प्रकाश डाला है।[6]

दूसरी ओर, लीला फर्नांडीज ने स्वतंत्रता के बाद के काल के एक विशेष चटकल के अध्ययन के आधार पर कुछ सामान्य निष्कर्षों पर पहुंचने की कोशिश की है। (Leela Fernandes- *Producing Workers' The Politics of Gender, Class and Culture in the Calcutta Jute Mills*, Philadelphia, 1997) उनके अनुसार, औद्योगिक क्षेत्र में संघर्ष को श्रमिक वर्ग और मालिक वर्ग के बीच द्विध्रुवीय (Bipolar) संघर्ष के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए, बल्कि इसे श्रमिक वर्ग की नस्ल, जाति, धर्म, भाषा और आत्म-पहचान के आधार पर आंतरिक विरोधाभास (Internal Contradiction) के प्रकाश में भी देखा जाना चाहिए। इनमें से प्रत्येक की पहचान अतिव्यापी और परस्पर विरोधी के रूप में कार्य करती है। पारंपरिक नारीवादियों की तरह महिलाओं को एक-आयामी श्रेणी के रूप में चित्रित करना सुसंगत नहीं है।

स्वतंत्रता के बाद भारत में, अन्य उद्योगों की तरह, जूट उद्योग में महिला श्रमिकों का अनुपात धीरे-धीरे कम होता गया। स्वतंत्रता-पूर्व युग में, जूट मिलों में महिला श्रमिकों की संख्या लगभग 30 प्रतिशत थी, जो 1950-60 के दशक में घटकर मात्र 2 प्रतिशत रह गई। उनके अनुसार, लड़कियाँ मुख्य रूप से अकुशल, अर्ध-कुशल नौकरियों में लगी हुई हैं जहाँ मशीनीकरण बढ़ गया है, लेकिन यह तकनीकी परिवर्तन महिला श्रमिकों के अनुपात में गिरावट का एकमात्र कारण नहीं है। महिला श्रमिकों की उपस्थिति को पुरुष श्रमिकों और ट्रेड यूनियन आयोजकों द्वारा अनुकूल रूप से नहीं देखा गया। इसलिए, जब मालिकों ने विभिन्न बहानों से महिलाओं को बाहर रखा, तो उन्होंने उन्हें रोका नहीं, बल्कि परोक्ष रूप से उनका समर्थन किया। लेकिन सवाल यह है कि क्या मिलों से महिला श्रमिकों के धीरे-धीरे गायब होने के लिए ये कारण ही जिम्मेदार थे? मिलों में पुरुष श्रमिकों, अधिकारियों और महिलाओं के आपसी संबंधों के साथ-साथ आधुनिकीकरण को जितना महत्व दिया गया है, इस काल में महिला श्रमिकों के कल्याण के लिए बनाये गये कानूनों की भूमिका को उतना महत्वपूर्ण दृष्टि से नहीं देखा गया। 1948 में फ़ैक्टरी अधिनियम और उसके बाद महिलाओं की सुरक्षा और अधिकारों के लिए कानून लागू होने के बाद जूट मिलों में महिला श्रमिकों की संख्या में भारी गिरावट शुरू हो गई। हम उक्त शोध पत्र में इस पर विस्तार से चर्चा करने का प्रयास करेंगे।[7]

औपनिवेशिक काल में महिला जूट श्रमिकों की स्थिति

जूट मिलों के विकास के शुरुआती दौर से ही बड़ी संख्या में महिला श्रमिक जूट मिलों से जुड़ने लगीं। महिलाओं ने न केवल अकुशल कार्यों में बल्कि कुशल कार्यों में भी उत्कृष्ट प्रदर्शन किया, यहाँ तक कि कई मामलों में आश्चर्यजनक रूप से पुरुषों से भी बेहतर प्रदर्शन किया। इस मामले में समरेश बोस के 'जगद्दल' उपन्यास की एक पात्र बिमला का जिक्र किया जा सकता है। लेखक के शब्दों में "...मधु ने पहले उसे एक आदमी समझा। लेकिन एक पल देखने के बाद उसे एहसास हुआ कि वह महिला करघा चला रही है। एक साथ चार करघे चलाना। मधु ने इसके बारे में सुना है। नाम बिमली, मतलब बिमला। लोग कहते हैं, डकैत बिमली। डाकू ही है।... स्त्री-पुरुष उससे डरते हैं। साहब भी उनसे डरते हैं। इसके अलावा, एक ही समय में चार करघे चलाना कुछ ही लोगों के लिए संभव है। उन्होंने सुना कि गौरीपुर और रिशरा में कुछ महिलाएं करघा चलाती हैं।"[8] ऐसी कुशल लड़कियों की कोई कमी नहीं थी, लेकिन समय के साथ वे मिलों के अकुशल काम तक ही सीमित हो गईं।

1880 के दशक से, स्थानीय श्रमिकों के स्थान पर पड़ोसी राज्यों के पुरुष श्रमिकों के साथ-साथ महिला श्रमिक भी इन जूट मिलों में शामिल होने लगे। हालाँकि, इन महिलाओं में विधवाओं, तलाकशुदा, निःसंतान या सामाजिक रूप से बहिष्कृत महिलाओं की संख्या अधिक थी। इन जूट मिलों में केवल मद्रास की महिला श्रमिक ही अपने परिवारों के साथ काम करती थीं। बाकी अन्य महिला श्रमिकों की सामाजिक स्थिति कुछ खास नहीं थी। इस संबंध में कथाकार शरतचंद्र चट्टोपाध्याय की 'महेश' लघु कथा के कुछ कथनों पर प्रकाश डाला जा सकता है। उक्त कहानी में, जब गफूर अपनी बेटी अमीना को गांव छोड़कर फुलबेर का चटकल जाने के लिए कहता है, तो उसकी बेटी आश्चर्यचकित हो जाती है और उसे याद आता है कि उसके पिता कई दुखों के बावजूद उस मिल में काम करने के लिए सहमत नहीं हुए थें; - माना जाता हैं की वहां कोई धर्म नहीं है, लड़कियों के लिए कोई सम्मान नहीं है, ये बात उन्होंने कई बार सुनी है ।[9] मोहनलाल गंगोपाध्याय का उपन्यास 'असमाप्त चटाब्द' भी बिलासपुर की महिला श्रमिकों पर कालू सरदार के अकथनीय यौन शोषण और अत्याचार की स्पष्ट तस्वीर पेश करता है।[10] इसलिए यह आसानी से अनुमान लगाया जा सकता है कि महिला श्रमिकों के लिए इन मिलों में काम करना काफी कठिन था।

सूची अंक-1

स्वतंत्रता-पूर्व अवधि में कुल श्रम शक्ति में महिला श्रमिकों की आनुपातिक दर

वर्ष	वयस्क पुरुषों की संख्या	वयस्क महिलाओं की संख्या	बाल श्रमिकों की संख्या	श्रमिकों की कुल संख्या	श्रमिकों की कुल संख्या के संदर्भ में महिला श्रमिकों की संख्या (प्रतिशत)
1917	192667	41395	27320	261382	15.83%
1927	253681	52935	19249	325865	16.24%
1937	249737	37997	9	289680	13.11%
1947	273975	41707	0	315682	13.21%

Source: S.R. Deshpande, Report on an Enquiry into Conditions of Labour in the Jute Mill Industry in India, Delhi, 1946, P-6.

जैसा कि उपरोक्त सूची मैं स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि, उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में जूट मिलों में महिलाओं की संख्या बिल्कुल भी कम नहीं थी। कुल श्रम शक्ति का लगभग 16 प्रतिशत ही महिलाएँ थीं। अगले दो दशकों में यह संख्या लगातार बढ़ती गई। यहां तक कि 1930 के दशक की महामंदी के बावजूद भी जूट मिलों में महिला श्रमिकों की संख्या में कोई विशेष कमी नहीं आई। अगले दशक तक, यानी 1947 में देश के विभाजन से पहले तक, श्रम शक्ति में महिलाओं की स्थिति लगभग अपरिवर्तित रही। यह ध्यान देने योग्य है कि इस अवधि के दौरान जूट मिलों में बच्चों की संख्या धीरे-धीरे कम हो गई, जिसका मुख्य कारण बाल श्रम उन्मूलन के लिए 1931 की श्रम जांच समिति की सिफारिशें थीं। स्वतंत्रता-पूर्व युग में जूट मिलों में महिलाओं की उपस्थिति ध्यान देने योग्य थी। जूट, कपड़ा और खनन जैसे आधुनिक उद्योगों में महिला श्रमिकों की बड़ी उपस्थिति के परिणामस्वरूप, उनकी स्थिति पर ध्यान देने की आवश्यकता विशेष रूप से महसूस की जाती है। इस समय ILO के विभिन्न सम्मेलनों में महिला श्रमिकों के अधिकारों की सुरक्षा की चिंता देखी जा सकती है। भारत के श्रम बाजार में महिला श्रमिकों की अच्छी-खासी हिस्सेदारी होने के कारण श्रम कानून बनाते समय उनकी स्थिति को विशेष रूप से ध्यान में रखा जाता है।[11] ऐसा ही एक कानून ब्रिटिश भारत में बनाया गया था जिसे 'प्रसूति प्रसुबिधा अधिनियम 1937' के नाम से जाना जाता है। बंगाल में इसी कानून पर आधारित है 'बंगाल प्रसूति प्रसुबिधा अधिनियम 1939'।

औद्योगिकीकृत राज्यों ने भी प्रसूति प्रसुबिधा अधिनियम पारित किया जो काफी हद तक ब्रिटिश भारत में अधिनियमित प्रसूति प्रसुबिधा अधिनियम (1937) पर आधारित था। प्रसूति प्रसुबिधा अधिनियम का मुख्य दोष यह था कि, यह न तो एक समान था और न ही सार्वभौमिक था। सिंध और असम जैसे कुछ प्रांतों को छोड़कर मुफ्त प्रसवपूर्व और प्रसवोत्तर देखभाल का कोई प्रावधान नहीं था। मद्रास और बंगाल जैसे कुछ प्रांतों को छोड़कर, ऐसा कोई कानून नहीं था जो अधिकारियों को किसी महिला कर्मचारी को गर्भावस्था के लक्षण दिखाने पर बर्खास्त करने से रोकता हो। केवल मद्रास में, किसी महिला को गर्भावस्था से 5 महीने पहले पर्याप्त कारण के बिना उसके नियोक्ता द्वारा बर्खास्तगी का कोई नोटिस नहीं दिया जा सकता था, क्यूंकी इससे वह प्रसूति प्रसुबिधा से वंचित हो जाती, जबकि बंगाल में यह अवधि 6 महीने थी। उत्तर प्रदेश अधिनियम और असम अधिनियम में कुछ विशेष विशेषताएं थीं जिनका उल्लेख यहां किया जा सकता है। उत्तर प्रदेश अधिनियम में सामान्य लाभ के अतिरिक्त 5 रुपये के बोनस का प्रावधान था। एक वर्ष से कम उम्र के बच्चों की माताओं को अपने बच्चों को दूध पिलाने के लिए प्रतिदिन आधे घंटे के दो अतिरिक्त विराम का प्रावधान था। इन अतिरिक्त अंतरालों को काम के रूप में गिना जाता था

और इसके लिए पूरी मजदूरी का भुगतान किया जाता था। असम कानून के तहत, जब एक महिला अधिकारियों द्वारा प्रदान किए गए मुफ्त इलाज को स्वीकार करने से इनकार कर देती थी, तो वह किसी भी मातृत्व लाभ की हकदार नहीं होती थी। जब अधिनियम पहली बार लागू किया गया था, तो कई कारखानों के अधिकारियों ने महिला श्रमिकों को कारखानों से निकाल दिया था, लेकिन बाद में इस संबंध में कुछ सुधार देखने को मिला। हालाँकि, नियोक्ता अभी भी कई मामलों में अविवाहित लड़कियों, विधवाओं और बच्चे पैदा करने की उम्र पार कर चुकी महिलाओं को काम पर रखना पसंद करते थें। अहमदाबाद की टेक्सटाइल लेबर एसोसिएशन ऐसी ही एक रिपोर्ट का हवाला देती है जहां एक अविवाहित महिला को उसकी शादी के तुरंत बाद बिना कारण बताए नौकरी से निकाल दिया गया था। अधिकारियों के मुताबिक, नौकरी के समय उसे बताया गया था कि अगर उसने शादी की तो उसे नौकरी से निकाल दिया जाएगा। मूलतः फैक्ट्री अधिकारी लड़कियों को प्रसूति प्रसुबिधा अधिनियम के लाभ से वंचित करने के उद्देश्य से ऐसे कदम उठाते थे।

कई महिला श्रमिक अपनी अज्ञानता के कारण प्रसूति प्रसुबिधा अधिनियमो का दावा नहीं करती थीं। हालाँकि रॉयल कमीशन ने सिफारिश की (रिपोर्ट पृष्ठ 265) कि ईन अधिनियमो के संचालन के लिए प्रशासनिक शक्तियाँ कारखानों की महिला निरीक्षकों को सौंपी जानी चाहिए, अधिकांश प्रांतों में ऐसी कोई नियुक्ति नहीं की गई थी। महिला श्रमिकों को आम तौर पर अपनी अज्ञानता के कारण कानून की निम्नलिखित आवश्यकताओं का पालन करना मुश्किल लगता है-

(1) नियोक्ता को समय पर सूचना देना।
(2) रोजगार पात्रता अवधि का बनाए रखना।
(3) बच्चे के जन्म के चार सप्ताह बाद तुरंत काम पर लौट आएं।
(4) लाभ का दावा करने के लिए जन्म प्रमाण पत्र प्राप्त करना।

अधिनियम की प्रभावशीलता के बारे में पूछे जाने पर, भारतीय जूट मिल्स एसोसिएशन ने उत्तर दिया, "यह अधिनियम एक सीमित सीमा तक सफल रहा है। कई मिलों के अनुभव और निष्कर्षों से पता चलता है कि बहुत कम महिलाएं इस कानून के तहत बच्चे के जन्म से पहले चार सप्ताह की सवैतनिक छुट्टी का सुविधा ले पाती हैं। कई महिलाएं प्रसव से पहले दो महीने की छुट्टी लेती थीं और उन्हें केवल 4 सप्ताह की सवैतनिक छुट्टी मिलती थीं, लेकिन कई महिलाओं की समय से पहले डिलीवरी (लंबे समय तक खड़े रहने के परिणामस्वरूप) के कारण शायद ही उन्हें प्रसव से पहले 4 सप्ताह की सवैतनिक छुट्टी मिल पाती थीं।[12]

सूची अंक-2

प्रसूति प्रसुबिधा अधिनियम के लाभ प्राप्त करने वाली महिला श्रमिकों की संख्या 1947-1954

Year	1946	1947	1948	1949	1950	1951	1952	1953	1954
Number of women Workers	03	12	03	05	0	06	05	04	01

Source: Annual Report of IJMA (Indian Jute Mill Association), 1946-1954.

उपरोक्त सूची से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि 1947 में जूट मिलों में प्रसूति प्रसुबिधा अधिनियम के लाभ पाने वाली महिला श्रमिकों की अधिकतम संख्या 12 थी, अगले वर्ष से यह संख्या धीरे-धीरे कम होने लगी और 1954 में यह 1 श्रमिक तक सीमित हो गई। यह ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि इज्मा की वार्षिक रिपोर्ट में 1954 तक मातृत्व लाभ प्राप्तकर्ताओं की संख्या निर्दिष्ट की गई थी, लेकिन अगले वर्ष से यह प्रथा बंद हो गई और मातृत्व लाभ के संबंध में अधिकारियों की ओर से एक अजीब सी चुप्पी देखी गई।[13]

वास्तव में, मातृत्व लाभ अधिनियम को लागू करने में एक बड़ी चिंता पर्याप्त मातृत्व क्लीनिकों का प्रबंधन थी, जहां महिला श्रमिकों को प्रसव पूर्व और प्रसवोत्तर देखभाल प्राप्त होगी। भारतीय जूट मिल्स एसोसिएशन ने ठीक ही कहा है कि 'अनिवार्य और मुफ्त प्रसूति क्लीनिकों के अभाव के कारण प्रसूता महिला श्रमिक उचित सेवाओं से वंचित रह जाती हैं, जिससे 'स्वस्थ बच्चे और स्वस्थ माता' का लक्ष्य अप्राप्य हो जाता है।'[14]

उत्तर-औपनिवेशिक काल में महिला जूट श्रमिकों की स्थिति

आजादी के बाद स्थिति में कोई खास बदलाव नहीं आया। केंद्र में नई सरकार ने जनकल्याणकारी नीतियां अपनाईं, महिलाओं की स्थिति में सुधार और सशक्तिकरण पर विशेष ध्यान दिया गया। मातृत्व लाभ के अलावा वजन उठाने की सीमा तय करना, शिशुओं की देखभाल के लिए कारखानों में क्रेच की व्यवस्था, महिलाओं के लिए अलग विश्राम कक्ष और शौचालय, निश्चित अवधि के दौरान महिला श्रमिकों के काम पर प्रतिबंध, नाइट शिफ्ट में महिला श्रमिकों के नियुक्ति पर पाबंदी आदि विषय के संजुक्ति से फ़ैक्टरी मालिकों को महिला श्रमिकों को

रोजगार देना अधिक महंगा और कठिन लगने लगा1 विशेष रूप से, ये कानून कारखानों में एक निश्चित संख्या में महिला श्रमिकों के रोजगार का प्रावधान नहीं करते थे, इसलिए अधिकारियों ने जानबूझकर महिला श्रमिकों के रोजगार को हतोत्साहित करना शुरू कर दिया।[15] यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि श्रम पर रॉयल कमीशन की 1931 की रिपोर्ट में संदेह था कि पुरुषों की तुलना में महिला श्रमिकों के लिए काम के घंटों पर प्रतिबंध महिला श्रमिकों के कामकाजी जीवन पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकता है। उनकी भाषा में- 'to restrict women by law to shorter hours than men would undoubtedly lead to the substitution of men for women in many factories, and we believe that it is desirable to increase rather than to diminish the openings for the employment of women'।[16]

1958 में जूट मिलों पर औद्योगिक समिति के निर्णय के आधार पर, रोजगार में महिलाओं की गिरावट का अध्ययन करने के लिए पश्चिम बंगाल में एक त्रिपक्षीय समिति का गठन किया गया था, जिन्होंने राय दी कि कारखानों में महिलाओं की संख्या में गिरावट का मुख्य कारण महिलाओं द्वारा वजन उठाने पर प्रतिबंध हैं। जूट उद्योग, जो महिलाओं के लिए सबसे बड़े नियोक्ताओं में से एक था, इस अधिनियम से सबसे अधिक प्रभावित हुआ। मौजूदा नियमों के मुताबिक महिलाएं अधिकतम 65 पाउंड वजन उठा सकती हैं। जहां जूट रोल का वजन 80 से 110 पाउंड होता है। 1944 में मिलों द्वारा नियोजित श्रमिकों की कुल संख्या 2,89,000 थी, जिनमें से 38,957 महिलाएँ थीं, जो कुल श्रम शक्ति का लगभग 14% था। 1952 में, फ़ैक्टरी अधिनियम पारित होने के 4 साल बाद, जूट उद्योग में कर्मचारियों की कुल संख्या 2,92,000 थी, जिनमें से 32,000 (11.2%) महिलाएँ थीं। 1962 तक, उद्योग में कर्मचारियों की कुल संख्या 2.4 लाख थी, जिनमें से केवल 9,400 महिलाएँ (3.9%) थीं। 1971 में पूरे जूट उद्योग में केवल 6,642 महिलाएँ बची थीं और इस तरह कारखानों से महिला श्रमिकों का क्रमिक और सचेत उन्मूलन शुरू हो गया। समिति द्वारा दौरा किए गए आंध्र प्रदेश के चटकल में "1960 के दशक के अंत में 500 से अधिक महिला श्रमिक थीं। 1973 में यह घटकर केवल 74 रह गई थी जो मुख्य रूप से सिलाई विभाग में कार्यरत थीं, जिनमें ज्यादातर बुजुर्ग महिलाएं थीं। स्थायी कर्मचारी होने के कारण उनकी सेवाएं ली जा रही थीं। पश्चिम बंगाल में एक अन्य मिल के अधिकारी स्पष्ट रूप से महिलाओं के रोजगार के सख्त विरोधी थे और उनकी सेवाएँ झाड़ू-पोछा और सिलाई तक ही सीमित पाई गईं।[17]

सूची अंक-3

स्वतंत्रता के बाद की अवधि (1947-1961) के दौरान चटकल में कार्यरत महिला श्रमिकों की आनुपातिक दर

वर्ष	वयस्क पुरुषों की संख्या	वयस्क महिलाओं की संख्या	श्रमिकों की कुल संख्या	श्रमिकों की कुल संख्या के संदर्भ में महिला श्रमिकों की संख्या (प्रतिशत)
1948	285741	41909	327650	12.79
1949	279393	41494	320887	12.93
1957	253662	16192	269854	6.38
1958	242694	12461	255155	5.13
1959	228682	10573	239255	4.62
1960	231518	10165	241683	4.39
1961	213135	8922	222057	4.19

Source: Report on Survey of Labour Conditions in Jute Factories in India, Labour Bureau, Ministry of Labour and Employment, Govt. of India, Simla, 30th Dec, 1963, P-12.

उपरोक्त सूची से कार्यबल में महिला श्रमिकों के घटते क्रम को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। हालाँकि आज़ादी के बाद के वर्षों में इस संख्या में कोई खास कमी नहीं आई, लेकिन 1950 के दशक से महिला श्रमिकों की संख्या धीरे-धीरे कम होने लगी। आज़ादी के एक दशक के भीतर यह संख्या लगभग आधी (6.38%) हो गई और अगले कुछ वर्षों में 1961 में यह 4.19% हो गई। महिला श्रमिकों की इस गिरावट को केवल आधुनिकीकरण और पितृसत्तात्मक व्यवस्था के परिणाम के रूप में देखना सही नहीं है।

हालाँकि 1939 का बंगाल मातृत्व लाभ अधिनियम बनाया गया था, लेकिन इसे मिलों में व्यापक रूप से लागू नहीं किया गया था जैसा कि सूची अंक-2 से स्पष्ट है। लेकिन 1961 में, केंद्रीय मातृत्व लाभ अधिनियम संसद में पेश किया गया और भारत के राष्ट्रपति ने 12 दिसंबर 1961 को इस अधिनियम को मंजूरी दे दी, जिससे पिछले राज्य-आधारित मातृत्व लाभ अधिनियम को निरस्त कर दिया गया। यह

अधिनियम 1 जनवरी 1963 को बंगाल में लागू हुआ। हालाँकि, इस अधिनियम को कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के साथ शामिल कर दिया गया।

हालाँकि, 'वेतन' शब्द को पिछले बंगाल मातृत्व लाभ अधिनियम (1939) की तुलना में इस नए केंद्रीय मातृत्व लाभ अधिनियम में अधिक व्यापक रूप से परिभाषित किया गया है। यह अधिनियम कुछ अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तन लेकर आया। पिछले कानून में अधिकतम 8 सप्ताह का लाभ मिलता था लेकिन नए कानून ने इसे बढ़ाकर 12 सप्ताह कर दिया। लाभ की अवधि को डिलीवरी की तारीख से पहले के नौ महीनों के रोजगार से अपेक्षित तारीख से ठीक पहले के बारह महीनों में 160 कार्य दिवसों के रूप में परिभाषित किया गया है।

नए कानून में कुछ अन्य लाभों का भी उल्लेख किया गया है, जैसे कि गर्भवती महिला श्रमिकों को प्रसवपूर्व और प्रसवोत्तर चिकित्सा सुविधाएं प्रदान नहीं किए जाने पर 25 रुपये का 'मेडिकल बोनस' देने का प्रावधान दिया गया। गर्भपात के मामले में 6 सप्ताह का सवेतन अवकाश या गर्भावस्था के कारण बीमारी के मामले में 1 महीने का सवैतनिक अवकाश प्रावधान दिया गया। इसके अलावा, अधिनियम किसी गर्भवती महिला कार्यकर्ता को ऐसे किसी भी काम में नियोजित करने पर प्रतिबंध लगाता है जिसके कारण उसे लंबे समय तक खड़ा रहना पड़ सकता है या उसकी शारीरिक बीमारी हो सकती है। जन्म देने के बाद, उसे अपने बच्चे की देखभाल के लिए काम से कम से कम दो बार ब्रेक देने का प्रावधान है जब तक कि उसका बच्चा 15 महीने का न हो जाए।[18]

हालाँकि मिल अधिकारियों ने शुरू में अधिनियम का विरोध नहीं किया था, लेकिन अधिनियम के लिए आवश्यक सेटअप के लिए अधिकारियों को नए बुनियादी ढाँचे, जैसे प्रसूति क्लीनिक, क्लीच आदि का निर्माण करना आवश्यक था। इसके अलावा, 1948 के फैक्टरी अधिनियम में महिला श्रमिकों के रोजगार पर लगाए गए प्रतिबंधों के परिणामस्वरूप, मिल के काम में महिला श्रमिकों का रोजगार अधिकारियों के लिए विशेष लाभदायक नहीं था, लेकिन उन्हें कुछ अतिरिक्त समस्याओं का सामना करना पड़ा। ऐसी स्थिति में उनके लिए केवल एक ही आसान रास्ता था, वह था महिला श्रमिकों को जानबूझकर कारखानों में स्थायी काम से हटाकर उनकी जिम्मेदारियों से खुद को मुक्त करना, क्योंकि भले ही महिलाओं के अधिकारों की रक्षा के लिए एक के बाद एक प्रावधान किए गए थे, किंतु कारखानों या मिलों में महिला श्रमिकों की एक निश्चित संख्या रखने का कोई प्रावधान नहीं था। इसलिए अधिकारी बहुत ही सूझ बुझ तरीके से महिला श्रमिकों की संख्या धीरे धीरे कम करते गए।

सूची अंक-4

स्वतंत्रता के बाद की अवधि (1981-1993) के दौरान चटकल में कार्यरत महिला श्रमिकों की आनुपातिक दर

वर्ष	वयस्क पुरुषों की संख्या	वयस्क महिलाओं की संख्या	श्रमिकों की कुल संख्या	श्रमिकों की कुल संख्या के संदर्भ में महिला श्रमिकों की संख्या (प्रतिशत)
1981	**235,900**	**6,100**	**2,42,000**	**2.5**
1991	**138,600**	**2,800**	**1,41,400**	**1.9**
1993	**138,400**	**2,700**	**1,41,100**	**1.9**

Source: Report of the Study Group on Women and Child Labour,
National Commission on Labour September 2001, P-310.

2001 में प्रकाशित राष्ट्रीय श्रम आयोग की रिपोर्ट से पता चलता है कि 1981 में चटकल में कार्यरत महिलाओं की संख्या 1961 की तुलना में आधी यानी 2.5 थी और अगले दशक में यह संख्या और घटकर 1.9 हो गई।[19] यानी नए कानून के लागू होने के 30 साल के अंदर ही महिला कामगारों की संख्या में भारी गिरावट होने लगी. इसलिए यह आसानी से माना जा सकता है कि महिलाओं के अधिकारों की रक्षा के लिए बनाए गए कानूनों का उनके कामकाजी जीवन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। हालाँकि इन कानूनों ने उन्हें अधिकार और विशेषाधिकार दिए, लेकिन नौकरी की सुरक्षा की गारंटी नहीं दी, और मिल अधिकारियों ने कानून के इस पहलू का चालाकी पूर्ण उपयोग करके खुद को अपने दायित्व से मुक्त करने की कोशिश की।

निष्कर्ष

दरअसल, इस उद्योग की स्थापना के पहले दिन से ही बड़ी संख्या में महिला श्रमिक इससे जुड़ी थीं। मिल अधिकारियों के लिए शुरू में उनसे कम वेतन पर पूरा काम लेना लाभदायक था। लेकिन श्रम कानूनों के धीरे-धीरे लागू होने से महिला श्रमिकों को कई विशेषाधिकार दिए गए। हालाँकि मिलों ने शुरू में इस अधिनियम का अनुपालन नहीं किया, फिर भी उन्हें कुछ दायित्वों का पालन करना पड़ा। 1939 में मातृत्व लाभ अधिनियम के पारित होने और 1947 में देश को आजादी मिलने के बाद, 1948 के फैक्ट्री अधिनियम में महिला श्रमिकों को अधिकार और

विशेषाधिकार प्रदान करने के लिए कुछ नए प्रावधान किए गए। 1961 में, जब पुराने राज्य-आधारित मातृत्व लाभ अधिनियम के बजाय केंद्रीय रूप से मातृत्व लाभ अधिनियम बनाया गया, तो महिला श्रमिकों को कई अतिरिक्त लाभ प्रदान किए गए।

महिला श्रमिकों के लिए अलग बाथरूम का प्रावधान, क्लेच (छोटे बच्चों के लिए घर) का प्रावधान, निश्चित मात्रा में भार उठाना, रात की पाली में महिला श्रमिकों के रोजगार पर रोक आदि कानून में मिल मालिकों ने न केवल महिला श्रमिकों को रोजगार देने में अतिरिक्त पूंजी का निवेश देखा, बल्कि यह उनके लिए एक अवांछित परेशानी भी थी। इसलिए इस समस्या से छुटकारा पाने के लिए उन्होंने एक बहुत ही आसान तरीका खोजा और धीरे-धीरे मिलों के अंदर महिला श्रमिकों को नियोजित करना बंद कर दिया और जो महिलाएँ कार्यरत थीं उन्हें मुख्य रूप से स्थानांतरण या अनुबंध कार्य में लगा दिया गया, ताकि उन्हें उपरोक्त कोई भी लाभ प्रदान न करना पड़े। अंततः 1991 में जब देश ने उदारीकरण की नीति अपनाई तो मिल मालिकों द्वारा मिलों का सारा काम स्थायी श्रमिकों के स्थान पर अस्थायी या ठेका मजदूरों के कराने से परिणामस्वरूप, जिससे उपरोक्त कानूनों के लाभ स्वतः समाप्त हो जाते हैं।

संदर्भ सूची

1. Tirthankar Roy, *The Economic History of India 1857-1947*, Third Edition, Oxford University Press, New Delhi, 2000, Pp- 14-15.
2. B. Foley, *Report on Labour in Bengal*, 1906, Calcutta, Para-29.
3. S. R. Deshpande, *Report on an Enquiry into Conditions of Labour in the Jute Mill Industry in India*, Delhi, 1946, P-6.
4. Samita Sen, *Women and Labour in Late Colonial India: The Bengal Jute Industry*,' Cambridge University Press, 1999.
5. अमल दास, 'चटकल श्रोमिकदेर बहिर्भुत जीवन (1890 दशक थेके 1920र दशक)' (बंगला निबंध), और मंजू चट्टोपाध्याय, 'चटकलेर मेये श्रमिक- 70 बछर आगे-परे' (बंगला निबंध), अनुसंधाने श्रमिक इतिहास, निर्बान बसु द्वारा संपादित, पश्चिम बंगाल इतिहास समिति, कोलकाता, 2013.
6. Sutapa Sengupta, Persecution and Protest, Lambert Academic Publishing, Mauritius, 2019.
7. Leela Fernandes- *Producing Workers' The Politics of Gender, Class and Culture in the Calcutta Jute Mills*, Philadelphia, 1997.
8. समरेश बोस, 'जगद्दल' (बंगला उपन्यास), सरोज बनर्जी, द्वारा संपादित 'समरेश बोस रचनावली', आनंद पब्लिशर्स, कोलकाता, 2017, पृष्ठ- 71।
9. शरतचंद्र चटर्जी, 'महेश' (बंगला लघु कथा), सुकुमार सेन द्वारा संपादित 'सुल्हव शरत समग्र', आनंद पब्लिशर्स, कोलकाता, 2017, पृष्ठ- 1733।
10. मोहनलाल गंगोपाध्याय, 'असमाप्त चटाब्द' (बंगला उपन्यास), चैत्र, 1369 बंगबाद, मार्च-अप्रैल, 1962, कलकत्ता, पृष्ठ- 96-100।
11. Towards Equality, *Report of The Committee on The Status of Women in India*, Government of India, Department of Social Welfare, Ministry of Education and Social Welfare, December, 1974, P-189.
12. *Report of the Labour Investigation Committee*, 1946, Delhi, P- 54-55.
13. Annual Report of IJMA, 1946-1954.
14. Report of the Labour Investigation Committee, 1946, *Ibid*, P- 56.
15. Towards Equality, *Ibid*, P-180.
16. Report of the Roval Commission on Labour in India, Calcutta: Government of India, Central Publication Branch, 1931, P- 51.
17. *Op.cit*., P-191.
18. Annual Report of IJMA, 1963, पृष्ठ- 106-107।
19. *Report of the Study Group on Women and Child Labour*, National Commission on Labour September 2001, P-310.